बी.ए. द्वितीय वर्ष निराला और उनका साहित्य

निराला को अपने समय में 'महाप्राण' कहा गया था और यह एकदम सही भी था क्योंकि उस पूरे दौर में एक कवि अपने समय के कई अल्पप्राण प्रतिमानों को चुनौती दे कर अपना महाप्राणत्व सिद्ध कर रहा था। अपने युग में कई तरह की आलोचनाओं और प्रत्यालोचनाओं को झेलते हुए इस कवि ने पहली बार 'मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति' की अवधारणा प्रस्तुत की थी। शायद इसी लिए छायावाद के बाद के सभी काव्यान्दोलनों ने निराला को याद किया।

1896 में बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल रियासत में श्री रामसहाय तिवारी के घर जन्में सुर्ज कुमार ने स्वयं को 'सूर्यकान्त' के रूप में निर्मित किया। अवध क्षेत्र के उन्नाव जनपद के गढ़ाकोला गांव के मूल निवासी निराला जी को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने हिन्दी के आधुनिक कवियों में 'शताब्दी का कवि' कहा था। परवर्ती समय में इक्कीसवीं सदी के आगमन के साथ यह सिद्ध और सहज स्वीकार्य भी हो गया।

निराला का कवि-व्यक्तित्व छायावाद की अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके हिन्दी की परवर्ती कविता की भूमिका तैयार करता है। यह एक ऐसे कवि की दुनिया है जिसमें कविता से मान्यताएं बन सकती हैं, मान्यताओं से कविता नहीं। भावना और बुद्धि की समन्वित उपस्थिति तथा रचना-प्रक्रिया में उनकी एकतानता ही वह आधार है जिससे निराला की कविता दीर्घजीवी भी होती है और कालजयी भी।

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह कहते हैं- 'निराला हिन्दी के उन कवियों में से हैं जिनमें हिन्दी की समूची परम्परा बोलती है। उनकी कविता में समूची हिन्दी की परम्परा की गूंज तो सुनाई पड़ेगी ही, उसमें उर्दू परम्परा भी मिलेगी, संस्कृत परम्परा मिलेगी। जैसा इलियट ने कहा था कि एक बड़ा कवि अपनी हड्डी और मज्जा में पूरी परम्परा को वर्जिल और होमर से लेकर लिखता है। उसी तरह निराला हैं। हिन्दी कविता से आगे निकल कर भारतीय कविता की परम्पराओं की गूंज इधर उर्दू की, संस्कृत की परम्पराओं की गूंज और रवीन्द्रनाथ हैं- सबकी गूंज निराला की कविता में है। वे उसको लेकर कविता बनाते हैं जो ठेठ अपना है, लेकिन परम्परा के सर्वोत्तम सार को प्राप्त करने की भी चेष्टा करते हैं।'

निराला का कवि-विकास एकैरैखिक या सपाट नहीं है, उसमें कई घुमाव हैं, उसके कई स्तर हैं। निराला के विकास के बारे में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा था कि- 'यदि सामयिक हिन्दी में कोई ऐसा विषय है, जो अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट और दुरूह समझा जा सके तो वह कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का काव्य विकास है।' ' एक ही समय में भिन्न प्रकार की कविताओं के साथ कवि अपने पाठकों और आलोचकों के समक्ष चुनौती देता खड़ा हो जाता है। एक ही दौर में अलग भावबोध, अलग कन्टेन्ट और फॉर्म निराला की संश्लिष्ट काव्य-संवेदना का पता तो देते ही हैं।

रामविलास जी के अनुसार- ' उनके पूरे काव्य-काल को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला 1920 से लेकर 1938 तक का पूर्ववर्ती काल छायावादी है। दूसरा 1939 से 1949 तक का मध्यवर्तीकाल यथार्थवादी है। फिर 1950 से 1961 तक का परवर्तीकाल जिसमें प्रायः गीत ही रचे गए। निराला छायावाद के दौर में भी यथार्थवादी कविताएं और प्रगतिवाद के दौर में भी छायावादी गीत रच सकते हैं। उनके गीत यथार्थ को प्रस्तुत करती कविता में और कविताएं मधुरतम गीतों में परिणत हो सकती हैं।'

अशोक वाजपेयी ने कहीं कहा है महाकवि की विशेषता ही होती है बड़ी रेंज का कवि होना। निराला इसीलिए महाकवि हैं क्योंकि एक तरफ तो उनमें क्लैसिकी परम्परा के दर्शन होते हैं वहीं दूसरी ओर एकदम अपने आस-पास के परिवेश के और जनधर्मिता की कविता के। निराला इसीलिए दूसरे छायावादी कवियों से अलग हैं क्योंकि उनका विद्रोह महज भावनात्मक उफान नहीं है, बल्कि वह तो जीवन और सामाजिक सम्बन्धों की बेहतर समझ और उससे बनी मानसिक चेतना से उत्पन्न है। छायावाद के दौर और दायरे में रहकर भी कवि छायावाद का अतिक्रमण करता है, कविता की नई ज़मीन तलाशता है, बिना घोषणा किए नई राहों का अन्वेषण करता है, आगे आने वालों को राह दिखाता है और खुद इन सबसे गुजरकर नई-नई उपलब्धियाँ हासिल करता है।

कवि अरुण कमल कहते हैं- 'निराला में सब कुछ उदात्त है। वे उन थोड़े से कवियों में हैं, जहां सब कुछ उदात्त है-गद्य भी, पद्य भी। निराला शायद पद्य का व्यवहार नहीं करते, जो मैं कह रहा हूँ। 'पद्य' की जगह 'कविता', क्योंकि 'पद्य' के तो विरोध में थे वो। निराला ने कविता की मुक्ति की, विचारों की मुक्ति की बात की। निराला मनुष्य की मुक्ति के सबसे बड़े प्रहरियों में से एक हैं। उनका सम्पूर्ण लेखन मनुष्य की मुक्ति का लेखन है।'

निराला में मुक्ति की एकल याचना नहीं है बल्कि सामूहिक चेतना है। निराला का साहित्य न साहित्यिक कट्टरता या धार्मिक कट्टरता के समक्ष घुटने टेकता है और न साम्राज्यवाद के। वे तुलसीदास को काव्य-नायक बनाकर भी अपनी सांस्कृतिक अवधारणाओं को मध्ययुगीन नहीं बनाते अपितु दलित-चिन्ता आदि आधुनिक विमर्शों का प्रक्षेपण करते हैं।

निराला की अपनी सांस्कृतिक अवधारणायें हैं जो निश्चय ही नवजागरण के दौर से निर्मित होती हैं। अतीत की पुनर्व्याख्या नवजागरण के दौर की विशेषता थी। भारतीय मेधा औपनिवेशिक सत्ता द्वारा हमारे इतिहास और संस्कृति के सम्बन्ध में प्रचारित झूठ के प्रतिकार में जुट गई थी क्योंकि इस हीनता-बोध से मुक्त हुए बिना न तो अपने तिव्र वर्तमान से टकराया जा सकता था और न अपने भविष्य के मधुर स्वप्न बुने जा सकते थे। ऐसे में जहां कुछ लोग अतीत में जाकर वापस अपने वर्तमान में लौटे वहीं कुछ उस अतीत की छलना में फंस कर रह गए।

उन्नीसवीं सदी के नवजागरण और उससे उपजी राष्ट्रवादी राजनीति की यह सीमा थी कि उसने सिर्फ औपनिवेशिक सत्ता और उसके सांस्कृतिक वर्चस्व से संघर्ष किया, जबकि साहित्य इससे आगे बढ़ता गया और यह निराला और उन जैसे थोड़े से साहित्यकारों ने सम्भव किया। यही कारण है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के विचार में और उसके भावबोध में जातीयता और साम्प्रदायिकता के सवाल सामाजिक सवाल तो बने किन्तु राजनैतिक सवालों में रूपान्तरित नहीं हो सके। नवजागरण के साथ निराला के अपने समय की भी यह सीमा तो थी ही। इस दौर में निराला की अवधारणाएं अतीतोन्मुखी नज़र आती हैं। लेकिन, अतीत का वह कौन सा रूप है जो बाद में उनके आकर्षण का केन्द्र बनता है-यह भी देखा जाना आवश्यक है। शायद उनको आकर्षित करती है अतीत की वह जनोन्मुखी चेतना, जिसके चलते वे कहते हैं-

वाल्मीकि ने पहले वेदों की लीक छोड़ी

छन्दों में गीत रचे, मन्त्रों को छोड़ कर

मानव को मान दिया,

धरती की प्यारी लड़की सीता के गाने गाये।

कृष्ण ने ज़मीं पकड़ी

इन्द्र की पूजा की जगह

गोवर्धन को पुजाया

मानवों को, गायों और बैलों को मान दिया।

हल को बलदेव ने हथियार बनाया,

कन्धे पर डाले फिरे

खेती हरी-भरी हुई। (चर्खा चला)

निराला अपनी इन अवधारणाओं में पुराकथाओं की पुनर्रचना करते हैं। उनके राम, श्यामा और तुलसीदास अपने समय के साथ-साथ बीसवीं शती की औपनिवेशिक चुनौतियों का भी सामना कर रहे थे और रुपान्तरित भी हो रहे थे। 'राम की शक्ति-पूजा' के राम सिर्फ पौराणिक नहीं हैं। प्रो. शंभुनाथ के शब्दों में कहें तो- "निराला का अतीत कोई 'रिजिड पास्ट' नहीं है। नवजागरणकाल के उस पूरे दौर में निराला का इतिहास-उच्चबोध भिन्न था। "

वे खुद अतीत के गान पर प्रश्न करते हैं-

कठिन श्रृंखला बजा-बजा कर

गाता हूँ अतीत के गान

मुझ भूले पर उस अतीत का

क्या ऐसा ही होगा ध्यान। (आदान-प्रदान)

इसी प्रकार एक अन्य कविता में कहते हैं-

अपने अतीत का ध्यान

करता मैं गाता था गाने भूले अग्रियमाण!

एकाएक क्षोभ का अन्तर में होते संचार

उठी व्यथित उंगली से कातर एक तीव्र -झंकार,

विकल वीणा के टूटे तार! (सन्तप्त)

उपरोक्त दोनों कविताओं का रचनाकाल 1924 है। निराला में अपने अतीत से मुक्त होने की छटपटाहट आगे भी चलती रहती है क्योंकि वे नवता के आग्रही हैं। 1930 में प्रकाशित 'कल्पना के कानन की रानी!' शीर्षक कविता में उनकी अभ्यर्थना है-

कल्पना के कानन की रानी !

आओ, आओ मृदु-पद, मेरे

मानस की कुसुमित वाणी!

मेरे प्राणों के प्याले को भर दो,

प्रिये, दृगों के मद से मादक कर दो

मेरी अखिल पुरातन-प्रियता हर दो

मुझको एक अमर वर दो

मैंने जिसकी हठ ठानी।

1931 में निराला का नवता-आग्रही कवि-मन सिर्फ़ अपने लिए ही नहीं वरन् समस्त भारतीय काव्य-संसार के लिए मांग करता है-

नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,

नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव,

नव नभ के नव विहग-वृन्द को

नव पर, नव स्वर दे!

(वर दे, वीणावादिनि वर दे!)

इसी के साथ निराला अपने प्रतिमान निर्मित करते हैं- स्वयं अपने लिए भी तथा औरों के लिए भी। अखिल पुरातन प्रियता के समापन की कामना करते हुए आत्मालोचन करते हैं, अपना बार-बार परीक्षण करते हैं। बिल्कुल रचना-प्रक्रिया के उस हिस्से की तरह जिसमें कवि-लेखक बार-बार अपनी ही कविताओं में काट-छांट करता है। निराला में आत्म-मुग्धता नहीं आने पाती और अपने को अपनी ही बनायी कसौटी पर परखते हुए अपनी बची-खुची पुरातन-प्रियता को नष्ट करना चाहते हैं।

वह पुनः याचना करते हैं- 'जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन/क्या करूंगा तन जीवन हीन।' ' और इस तरह वह जीवन-हीन प्राचीनता से मुक्ति पा लेते हैं फिर वह प्राचीनता चाहे समाज की हो या साहित्य की। यहीं निराला मुक्तिबोध से पूर्व हमें आत्म-संघर्ष के एक

बड़े कवि की तरह मिलते हैं-मुक्तिबोध के पूर्वज।

निराला की इस पुरातनप्रियता और मध्यकालीन-बोध के आरोप के क्रम में 'राम की शक्ति-पूजा' को उद्धृत किया जाता है। निराला ने 'राम की शक्ति-पूजा' में राम को अवतार या दिव्य शक्तियों से लैस न मानकर वे साधारण मानव के रूप में खड़ा करते हैं तथा शक्ति की मौलिक कल्पना के द्वारा शक्ति अर्जन करने को कहते हैं।

यह निराला की मुक्ति-चेतना का ही परिणाम था। यह निराला की पुरातन-प्रियता या मध्यकालीन-बोध नहीं है, यह परम्परा में रहकर परम्परा से विद्रोह है। इस कविता में राम इन्दीवर के स्थान पर अपनी आंख समर्पित करने का निर्णय लेते हैं। यह आंख सिर्फ़ कमल का विकल्प नहीं है बल्कि यह आत्मोत्सर्ग है और

पूरे मामले को राम की अपनी नज़रों से देखे जाने की कामना है। वह शक्ति जो अन्याय के साथ खड़ी है उसे एक तरह की चुनौती है कि इस अपराजेय समर को मेरी नज़रों से देखो और फिर तय करो कि किस ओर हो तुम ? आज का स्त्री-दलित-आदिवासी आन्दोलन यही मांग तो करता है कि हमें हमारी नज़र से देखा जाय, और तब जाकर यह सवाल पूछा जा सकता है कि 'पार्टनर तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?'

अब पाठक स्वयं तय करें कि शक्तिपूजा के कवि-निराला का यह मध्यकालीन बोध है अथवा आधुनिक दृष्टि ?

निराला का मन एक उदार हिन्दू का मन है। गालिब की कविता में भी इस्लाम का महत्व, उसकी परम्पराएं और उसके मिथकों का प्रयोग है मगर क्या मात्र इसी आधार पर उन्हें मुसलमान कवि कहा जा सकता है? अनास्था के कवि तो कबीर भी नहीं हैं। इनके बिना क्या भारतीय साहित्य परम्परा को सम-हजया जा सकता है? और फिर विश्व-साहित्य में तो यह भी उदाहरण मौजूद है कि अपनी सामन्ती, प्रतिक्रियावादी विचारधारा और ईसाइयत को मानने के बाद भी टाल्स्टाय का साहित्य 'रूसी साहित्य का दर्पण' है तथा राजतन्त्र के प्रति अपनी आस्थाओं के बाद भी बाल्जाक को कार्ल मार्क्स 'यथार्थ की गहरी समझ के लिए बेजोड़' कहते हैं।

जहां तक वेदान्त की बात है, बंगाल में जन्म के साथ निराला के वेदान्ती संस्कार हैं। उन पर विवेकानन्द का गहरा प्रभाव है। यह देखना भी दिलचस्प होगा कि क्या विवेकानन्द के प्रभाव से सचमुच निराला पुनरुत्थानवादी हो जाते हैं? दरअसल, उपनिवेशवाद और उसके द्वारा पोषित सामन्तवाद तथा उसके रूढ़ सांस्कृतिक मूल्यों का विरोध करते हुए विवेकानन्द ने अपनी एक ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी। शंकर का वह अद्वैत जो अपरिवर्तनशील शाश्वत और अमूर्त था उसके उलट उन्होंने कहा कि "गति अथवा परिवर्तन ही जीवन का गीत है।" शंकर के विपरीत वे बुद्ध की प्रशंसा करते हैं। उनके चिन्तन में भौतिकवाद के तत्व भी उपस्थित हैं और वे किसी वैयक्तिक ईश्वर द्वारा संसार के सृजन का मज़ाक उड़ाते हैं। उनके धार्मिक

दृष्टिकोण के केन्द्र में मनुष्य हैं इसीलिए विज्ञान की सत्ता व उसकी सामाजिक भूमिका को तथा आधुनिक सभ्यता के मूल्यों को भी सहज स्वीकार करते थे। यह सही है कि वर्णाश्रम धर्म को उन्होंने खारिज नहीं किया लेकिन सवर्णों की उत्पीड़क सत्ता को स्वीकृति भी उन्होंने कहीं और कभी नहीं दी। गुलामी को अपनी नियति मान लेने वाली आस्तिकता की अपेक्षा नास्तिकता उन्हें स्वीकार्य थी। आगे बढ़कर वे खुद को समाजवादी भी घोषित कर देते हैं। 10 जून 1898 को मुहम्मद सरफराज हुसेन को लिखे अपने एक पत्र में वे कहते हैं-"इसलिए हमें दृढ़ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और विलक्षण क्यों न हों, परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना मनुष्य जाति के महान जनसमूह के लिए वे मूल्यहीन हैं।.....मैं अपने मानस चक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता

हूँ जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और अजेय रूप में वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा।" इसीलिए एक जगह निराला कहते हैं- "इस देश की मनुष्यता का निर्माण और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का हल होना एक अर्थ रखते हैं।" बार-बार 'कल्चरल इंटरेक्शन' पर जोर देते हुए वे पूछते हैं-"देश में कितने मुसलमानों की विदुषी कुमारियां हिन्दुओं के घर आयीं और कितनी हिन्दुओं की मुसलमानों के घर गयीं?"

उनके उपनिवेशवाद-विरोध में भी अंध-राष्ट्रवाद नहीं है। 'कुकुरमुत्ता' में वे व्यक्त करते हैं- एक खासा हिन्दू-मुस्लिम खानदान एक ही रस्सी से किस्मत की बँधा काटता था.

हिन्दू मिथकों का उपयोग उस दौर की हिन्दी कविता की एक प्रवृत्ति थी। जिन्हें राष्ट्रकवि कहा गया वे मैथिलीशरण गुप्त महाकाव्य 'साकेत' रच रहे थे और दिनकर 'उर्वशी' । निराला भी यह करते हैं, परन्तु

भिन्न दृष्टि से। 'राम की शक्ति-पूजा' के राम और 'तुलसीदास' के तुलसी को निराला अपना समकालीन बना देते हैं। निराला के 'तुलसीदास' में आज की

दलित-चिन्ता भी है और विदेशी आक्रमण से जातीय संस्कृति के 'शीतलच्छाय' हो जाने की चिन्ता भी।

अपने 'साहित्य और जनता' शीर्षक लेख में निराला लिखते हैं- "हमें अच्छी तरह मालूम है, हमारे निर्यात्रबे फ़्रीसदी साहित्यिकों को और सौ फ़्रीसदी जनता को भगवान श्रीरामचन्द्र पर, उनके जन्म-कर्मादि पर पूरा-पूरा विश्वास है। अतः आज यदि राम के विरोध में कोई प्रासंगिक बात भी कही जाय तो जनता उसे सुनने को तैयार नहीं। साहित्यिकों में

केवल सुनने का धैर्य है, मत बदलने की शक्ति नहीं। यह अवश्य ही युगों की संचित साहित्य-शक्ति का ही दौर्बल्य है।'

एक रचनाकार के रूप में वे हकीकत को समझकर यह कह रहे हैं कि अभी 'मत बदलने' की शक्ति नहीं। निराला जिसे सौ फ़्रीसदी जनता कह रहे हैं वह इस हिन्दू समाज के बारे में ही। एक पारम्परिक हिन्दूवादी मन तो ऐसा सोच भी नहीं सकता। अभी बहुत समय नहीं बीता जब मक़बूल फ़िदा हुसैन की सरस्वती की पेन्टिंग को जलाने, उनके विरोध की घटनाएं इसी समाज में हुयीं और हुसैन को यह देश तक छोड़ना पड़ा। आज भी मुहम्मद साहब का एक 'कार्टून' अन्तर्राष्ट्रीय दुर्घटना बन जाता है। इसके बावजूद निराला अपने राम की, सरस्वती की पुनर्चना कर पाते हैं।

साकेत में मैथिलीशरण जी सवाल उठाते हैं 'राम तुम ईश्वर नहीं हो क्या?' वहीं निराला के राम निरे मनुष्य हैं, निराला के औपनिवेशिक समय के मनुष्य की तरह संशय से भरे हुए। पौराणिक राम को क्या सचमुच 'शक्ति की मौलिक कल्पना' करनी पड़ी होगी? क्या दशरथ-सुत राम निराला की मौलिकता के बिना सिर्फ़ तुलसी के समन्वयवाद के सहारे 'पुरुषोत्तम नवीन' हो सकते थे? फिर निराला को क्यों कहना पड़ा कि- 'बिना संहार के सर्जन असम्भव है/समन्वय झूठ है।' क्या बिना निराला की मौलिकता के महज़ वेदान्ती संस्कारों के सहारे शक्ति-पूजा का 'दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष' - हनुमान 'बिल्लेसुर बकरिहा' में 'थूथन लिए खड़ा सिर्फ़ एक पत्थर' हो सकता था? महावीर के मुंह पर पड़ता डण्डा बिल्लेसुर का है या निराला का?

प्रो. राजेन्द्र कुमार के शब्दों में कहें तो- "निराला की कविता मिथक से समकालीनता के द्वन्द्व की कविता है। निराला का आगमन हिन्दी कविता में एक क्रान्तिकारी घटना है। इसीलिए रामविलास शर्मा उन्हें 'क्रान्ति का कवि' कहते हैं और बच्चन सिंह उन्हें 'क्रान्तिकारी कवि'। उनकी क्रान्ति हर तरह के बन्धन से मुक्ति का विराट लक्ष्य लिए हुए थी। उनकी क्रान्ति का एक सिरा जनता की सामाजिक अवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन से जुड़ता है। सामाजिक क्रान्ति की उनकी भावधारा का स्रोत दलितों और उत्पीड़ितों के प्रति गम्भीर मानवीय करुणा है। दलित-शोषित-उत्पीड़न, सामान्य जन के संस्पर्श की एक शक्तिशाली उद्घोषणा उनकी काव्यात्मक उपलब्धि है-

मैंने 'मैं' -शैली अपनाई

देखा दुखी एक निज भाई

दुःख की छाया पड़ी हृदय में मेरे

झट उमड़ वेदना आई।

ये वही भाई है जो दलित और उत्पीड़ित है और जिसकी हिमायत हर साहित्यकार का फर्ज है। निराला ने अपनी प्रतिबद्धता, पक्षधरता, अपनी निष्ठा और अपने सरोकारों को असन्दिग्ध रूप से प्रमाणित किया। अपने इन्हीं सरोकारों के साथ वे मार्क्सवाद तक जाते हैं। दलितों-पिछड़ों से जल्द-जल्द पैर बढ़ाकर अपने बराबर खड़े होने तथा अंधेरे का ताला खोलने का आह्वान करने वाले कवि को विश्वास है कि अंधेरे का ताला वे ही खोलेंगे जो सदियों से अंधेरे में हैं। क्या इसे हिन्दी में 'दलित विमर्श' की पहली कविता कहा जा सकता है-

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ।

आज अमीरों की हवेली

किसानों की होगी पाठशाला

धोबी, पासी, चमार, तेली

खोलेंगे अंधेरे का ताला,

एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।

यहाँ जहाँ सेठ जी बैठे थे

बनिये की आँख दिखाते हुए,

उनके ऐंठाये ऐंठे थे

धोखे पर धोखा खाते हुए

बैंक किसानों का खुलवाओ।

सारी सम्पत्ति देश की हो,

सारी आपत्ति देश की बने,

जनता जातीय वेश की हो,

वाद से विवाद यह ठने,

काँटा काटें से कढाओ।

उनके निधन के बाद से अब तक बहुत कुछ बदला है। दलितों को अपने 'अंधेरे का ताला' खोलने की एक कुंजी मिली है। लेकिन 'बैंक किसानों का' कहाँ है? अवध के एक किसान कवि का स्मरण करते हुए देश में किसानों की आत्म-हत्याएं हमारी चेतना पर प्रहार करती हैं।

निराला ने जब अपने लेखन का आरम्भ किया था तभी अवध क्षेत्र में बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में 1921 में ज़मींदारों के खिलाफ किसानों का आन्दोलन हुआ था। इसके बाद चौरीचौरा काण्ड हुआ था जिसमें किसानों ने थाना फंूक दिया था। यह किसानों

का बड़ा आन्दोलन था जिससे निराला के किसान मन ने ज़रूर प्रेरणा पायी थी। किसान संस्कारों वाले कवि ने अपने गांव में किसान-ज़मींदार संघर्ष में किसानों की पक्षधरता की थी। अपने इन्हीं अनुभवों की

आंच में सीझी कविताओं के साथ हमें हमारे किसान कवि के दर्शन होते हैं। 1924 में ही 'बादल राग' में किसान और विप्लवी वीर के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था-

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,

तुझे बुलाता कृषक अधीर

ऐ विप्लव के वीर !

निराला अपनी 'वीणावादिनि' को भी तब ऐसी 'देवी सरस्वती' में परिणत कर देते हैं जो ऋतुओं की देवी हैं। ग्राम्य जीवन और भारतीय किसान पर ऋतुओं के प्रभाव की यह कविता कला की देवी-सरस्वती के परम्परित रूप को विस्तार देकर सृजन की देवी के रूप में चित्रित करती है। सरस्वती का सम्बन्ध वसन्त ऋतु से है और वसन्त नवता की नव-सर्जना की ऋतु है। भारतीय किसान का सम्पूर्ण जीवन इन ऋतुओं से ही संचालित होता है। निराला किसान को एक बड़ा सर्जक मानते हैं जो अपने श्रम और समर्पण से सृष्टि के लिए अन्न का सृजन करता है इसलिए सरस्वती को कवि ग्रामीण-जीवन की देवी के रूप में रूपान्तरित कर देता है। इस कविता पर नामवर जी कहते हैं- " 'नए पत्ते' की एक लम्बी कविता 'देवी सरस्वती' जो अपने प्रकृति-चित्र में पंतजी की ग्राम्या से अधिक यथार्थ तथा सांस्कृतिक परम्परा की गरिमा में बेजोड़ है, प्रायः निराला के भक्तों तथा सामान्य पाठकों से भी अनदेखी गुजर गई। जिस तरह छायावादी युग में पंतजी के उच्छ्वास, आंसू वगैरह की-सी विशेषताओं को समेटते हुए उसी शैली में 'यमुना के प्रति' शीर्षक लम्बी कविता लिखकर निराला ने चुनौती दी, उसी तरह प्रगतिशील युग में उनकी 'देवी सरस्वती' ने पंतजी की ग्राम्या के बिखरे प्रयत्नों को एक ही वृहद् प्रयत्न से ललकार दिया। ' "

निराला की यह कविता किसानों से गहरी आत्मीयता के बगैर सम्भव नहीं थी। उन्होंने किसानों को केन्द्र में रखकर जो कविताएं लिखीं उन कविताओं की हिन्दी में प्रायः बहुत चर्चा नहीं होती जबकि वे कविताएं बेहद महत्वपूर्ण हैं और प्रगतिशील कविता के दौर में उनका विकास नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल के काव्य-संसार में देखा जा सकता है किन्तु

जैसा डॉ. नन्दकिशोर नवल कहते हैं- "केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन ने उस भूमि पर कविताएं लिखी हैं, लेकिन उनके किसानों में निराला के किसानों वाला तेज नहीं है। ' "

निराला की ऐसी ही तमाम कविताएं मसलन 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डटकर बोला',

'डिंठी साहब आए' तथा 'महगू महंगा रहा' जैसी कविताएं तत्कालीन किसान-जीवन, निराला की प्रगतिशील चेतना और हिन्दी कविता की एक बड़ी उपलब्धि की तरह हैं।

वे एक ऐसी जातीय संस्कृति के पक्षधर हैं जो साम्राज्यवाद-विरोधी है। उनके लिए पूरी वर्ण-व्यवस्था 'दग्ध-मरुस्थल' है, सुजल नहीं। यह एक ऐसी विष-बेलि है जिसमें विष ही फल हैं, और इसमें सिर्फ दलित ही नहीं स्त्रियाँ भी पिसती हैं। 'तोड़ती पत्थर' में पहली बार निराला वह झंकार सुनते हैं जो हिन्दी कविता में ही शायद पहली बार सुनी गयी थी। यहीं वे अपना वर्गान्तरण करते हैं और 'वह तोड़ती पत्थर' वाक्य से शुरू हो कर यह कविता 'मैं तोड़ती पत्थर' पर समाप्त होती है जो यह संकेत करती है कि दलित-स्त्री के प्रति सहानुभूति से उपजी एक बात कवि की स्वानुभूति तक पहुँच चुकी है। निराला की 'स्फटिक शिला' कविता रामराज्य के मिथक और यूटोपिया और दलित के अन्तर्विरोधों पर टिप्पणी करती है-

कुटिया से निकली

काली एक नारी गाली देती, खाती ठिकली

देख कर चबूतरा

जैसे कोई अप्सरा

नाचने लगी हो गालियों से भाव बतलाकर

दोनों हाथ फैलाकर।

मैंने देखा, बड़ा मैला

मन उसका समाज से

चोट खाई हुई वह राम जी के राज से

शूद्रों को मिला नहीं

जिनसे कुछ भी कहीं।

दलित प्रसंग में राम जी का उल्लेख करके निराला एक ओर प्राचीन सामन्ती आदर्शवाद वहीं दूसरी ओर आधुनिक गांधीवादी रामराज्य पर करारी चोट करते हैं। उन्होंने लिखा था-“प्राचीन शीर्णता ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की तरह घेर रखा है। घर की छोटी-सी सीमा में बँधी हुई स्त्रियाँ आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य, सब कुछ भूली हुई हैं। ” एक दूसरे लेख में वे कहते हैं- “महिलाओं की स्वतन्त्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ़ उनकी स्वतन्त्रता का स्वरूप बतलाना है, और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रुक नहीं सकता, न वह अब तक कहीं रुका है। ‘ ‘ इस प्रकार एक बड़ा कवि दलित-मुक्ति और स्त्री-मुक्ति के साथ मनुष्य मात्र की मुक्ति का सवाल उठाता है और इसे कविता की मुक्ति तक ले जाता है।

निराला की कविता मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन-व्यापार की कविता भी है जिसमें जीवन का सम्पूर्ण संगीत है। निराला विरुद्धों से टकराते हुए, तनावों से जूझते हुए अपने अपराजेय मन को साध कर जब सामने आते हैं तो उनके साथ उनकी कविता अन्यतम सिद्धि बनकर हमारे सामने आती है। लगता है स्वतन्त्रता के साथ विभाजन और साम्प्रदायिकता का जो भयंकर रूप अपने समय में निराला ने देखा था और इसकी सच्चाइयों से सिहर कर शायद वे भक्ति-गीतों के उस शिल्प की ओर मुड़ गये थे जो अकबर के शासन-काल की सच्चाई बयान करने के लिए तुलसीदास ने चुना था। निराला के ये विनय-गीत ‘आत्म-चीत्कार’ की शकल में सामूहिक ‘जन-चीत्कार’ की अभिव्यक्ति हैं। इन गीतों के बारे में श्री दूधनाथ सिंह कहते हैं-“दरअसल निराला की ये प्रार्थनाएं मध्यकालीन भक्तिपदों से अलग हैं। उनका वैविध्य देवताओं का नहीं अन्तर्वस्तुओं का है।’ ’ यही फर्क इन कविताओं को आधुनिक बनाता है क्योंकि वे त्रैजिक हैं, साधनापरक नहीं। वे आधुनिक मनुष्य के अन्तरमन को बेधती हुयी दुःखगाथाएं हैं, जिनके पीछे कोई निर्वाण नहीं, कोई मोक्ष नहीं।

1946 में ‘नए पत्ते’ के प्रकाशन के बाद निराला मौन हो जाते हैं। अप्रैल 1946 के बाद उनकी कविता 31 जुलाई 1949 को मिलती है। जबकि भारतीय इतिहास का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण दौर है। भारत की स्वतन्त्रता और विभाजन-कल्लेआम इसी समय हुए। लेखन ही निराला की आजीविका का साधन था फिर भी वे इस दौरान कुछ नहीं लिख पाते। जबकि, बाद में अपनी मृत्यु तक वे अनवरत रचना करते रहे। क्या यह स्तब्धता उनके मोहभंग का परिणाम थी?

निराला का मौन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी दुर्घटना है जो विश्लेषण की मांग करती है।

बहरहाल, लम्बे मौन के बाद प्रकट हुए निराला सामने आते हैं तो जैसे थके-हारे, टूटे हुये। अपने पहले ही गीत में वे लिखते हैं-

हार गया जीवन-रण,
छोड़ गए साथी-जन,
एकाकी, नैश-क्षण,
कंटक-पथ, विगत पाथ।

अपने जीवन में पराजय-बोध उन्हें पहले भी कई बार हुआ था। निराला पहले भी लिख चुके थे-“हो गया व्यर्थ जीवन,/मैं रण में गया हार। ‘ ‘ यह व्यर्थता-बोध और अकेलापन उनके जैसे दूसरी आज़ादी के स्वप्नदर्शी का अकेलापन था। यह हार इसीलिए हुयी क्योंकि ठगे गए। जैसे लूट ही इस समाज का नियम हो। निराला ने लिखा-

चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे,
कण्ठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल देखो।
भर गया है ज़हर से,
संसार जैसे हार खाकर,
देखते हैं लोग, लोगों को
सही परिचय न पाकर।

स्वाधीन भारत की जो स्थितियाँ रहीं उसने निराला के बोध में नयी-नयी छवियाँ भरीं। इस दौर में हिंस्र पशुओं का बिम्ब निरन्तर उनकी चेतना में रहता है। इन भयानक हिंस्र पशुओं के रूप में वही ‘ठग-ठाकुर ‘ हैं जिन्होंने मनुष्य को बैल-घोड़ा बना दिया है। स्वाधीन भारत में नेहरू का युग स्वर्ण-युग माना जाता है, लेकिन निराला के लिए यह नरक-यात्रा का युग है। इस दौर की उनकी कविताओं में बार-बार अंधकार और बन्दीगृह की आवृत्ति होती है। यह वैसे ही अपने समय के सच की अभिव्यक्ति थी जैसे अपने समय के स्वर्ण-युग अकबर के शासन-काल का एक सच तुलसीदास अपनी विनय-पत्रिका में व्यक्त कर रहे थे।

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह कहते हैं-‘ये कविताएं केवल भक्ति नहीं है, प्रार्थना नहीं है। बल्कि रूप में, ढाँचे में, शब्दावली में यह भक्ति और आध्यात्मिकता है लेकिन, तह में जो अन्तर्वस्तु है, वह ईश्वर-विहीन नई कविता है क्योंकि उस समय बहुत लोग ईश्वर को सलीबों पर देख रहे थे।....निराला के भक्तिगीत एक भारतीय ढाँचे में भारतीय मानस में उत्पन्न होने वाली उस आधुनिकता की, उस आधुनिक बोध की, उस आधुनिक कविता की सृष्टि कर रहे थे।’ ‘ 1947 में जो आज़ादी मिली उसे देखने का एक नज़रिया निराला की इन कविताओं में मिलता है। इसीलिए निराला का यह मानना भी अब सन्देह से परे है कि उनका कोई समकालीन नहीं है।

पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है 'यह निराला के जीवन की आखिरी कविता है। निराला की इस अंतिम कविता में कोई भक्ति-भाव नहीं, उसकी प्रभु, नाथ और विश्वाधार वाली शब्दावली भी नहीं। जहाँ पहले 'अभी न होगा मेरा अन्त ' का प्रचण्ड आत्मविश्वास था वहीं अब 'लीला का सम्वरण समय फूलों का जैसे ' का स्वीकार है। एक-एक कर ऋतुएं बीत चुकी हैं। शरों की कठिन सेज पर पड़ा भीष्म ताक रहा है। पूर्व में ही जिसने 'मृत्यु की है रेख नीली ' को देख लिया था वही सूर्यकान्त अब जैसे अपने सूर्य के उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहा है।

गहन अंधकार में भी जीवन के प्रति अदम्य लालसा की यह कविता समाप्त होती है-'पुनः सबेरा एक और फेरा हो जी का। ' धार्मिक परम्परा में आवागमन-जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्ति ही तो मोक्ष है, लेकिन कवि को यह स्वीकार नहीं। उसे सुबह के साथ फिर जन्म लेना है।

Dr Vandana
Assistant Professor-Hindi